नाथपंथ का समाज दर्शन

महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ

Estd.-2018

डॉ. प्रदीप कुमार राव

D.D.U. GORAKHPUR UNIVERSITY

नाथपंथ का समाज दर्शन

महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ

डॉ. प्रदीप कुमार राव

प्रकाशकः

महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

उत्तर प्रदेश - 273009, भारत

ई-मेलः mygsg18@gmail.com

वेबसाइटः www.ddugorakhpuruniversity.in

संस्करणः

वर्ष प्रतिपदा 2019

सर्वाधिकार :

सुरक्षित

मूल्य :

40 रुपये मात्र

मुद्रक :

मोती पेपर कनवर्टर्स

गोरखपुर

NATHPANTH KA SAMAJ DARSHAN by - Dr. Pradeep Kumar Rao

समर्पण

भारतीय जीवन साधना के अभ्रांत
पथप्रदर्शक, जीते-जागते आदर्श,
मानव-भूमि को देव-भूमि बनाने वाले,
दुःखतापसंतप्त मानव जाति को योग,
अहिंसा, प्रेम, करुणा की शिक्षा देकर
उन्हें शान्ति एवं आनन्द के प्रदाता
मुक्ति-मार्गी नाथपंथ के
योगियों को समर्पित।

प्राक्कथन

महायोगी गोरक्षनाथ भारतीय धर्म-साधना के सिद्ध-योगी थे। वे अप्रतिम व्यक्तित्व से सम्पन्न योगमार्ग के उन्नायक थे। योग के बल पर सृष्टि के लय-प्रलय की क्षमता से युक्त थे। उन्होंने अपने समय की युग-धारा के प्रबल-प्रवाह को मोड़ दिया। समकालीन परिस्थितियों को युगानुकूल बनाया। परम्परागत विचार-प्रवाह को मथकर सार्वयुगीन तत्त्व का पुनर्प्रकटीकरण किया। योग के सैद्धान्तिक विचार-दर्शन को क्रियात्मक योग में बदला। महायोगी गोरक्षनाथ अपने इसी सर्वव्यापी व्यक्तित्व के कारण योगी के साथ-साथ युग-प्रवर्तक बने। वे धार्मिक-आध्यात्मिक गुरु के साथ समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने भारतीय समाज को जाग्रत किया, जीवन्त किया और रूढ़ियों-पाखण्डों से मुक्त होने का मार्ग दिखाया।

गोरक्षनाथ एवं उनके द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ के साहित्य भारत की लगभग सभी भाषाओं-बोलियों में उपलब्ध हैं। नाथपंथी साहित्य के अनुशीलन से महायोगी गोरक्षनाथ एवं नाथपंथ का '-समाज-दर्शन' जाना-समझा जा सकता है। नाथपंथ के 'सामज-दर्शन' पर अब तक किसी शोध-कार्य या पुस्तक की जानकारी मुझे प्राप्त नहीं है। यद्यपि कि अक्षय कुमार बनर्जी का 'गोरख-दर्शन' गुरु श्रीगोरक्षनाथ के विचार-दर्शन का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है तथापि यह ग्रन्थ भी 'सामाजिक-दर्शन' पर यदा-कदा संकेत करते हुए आगे बढ़ जाता है।

महायोगी गोरक्षनाथ का 'सामज-दर्शन' युग की माँग है। गुरु श्रीगोरक्षनाथ ने भारत के सामाजिक-परिवर्तन में वही भूमिका निभाई है जो छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में महात्मा बुद्ध एवं महावीर जैन ने निभाई थी। महायोगी गोरक्षनाथ एवं उनके द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ के व्यापक-फलक को समझने के लिए जो साहित्य उपलब्ध है उनमें गोरक्षसंहिता, गोरक्षशतक, सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति, योग-सिद्धान्त पद्धति, विवेक- मार्तण्ड, योग-मार्तण्ड, योग-चिन्तामणि, ज्ञानामृत, अमनस्क-आत्मबोध, योग-बीज, गोरक्ष सहस्रनाम, अमरौध-प्रबोध, गोरक्ष-गीता, मत्स्येन्द्रनाथ-संहिता, कौल-ज्ञान-निर्णय, नाद-बिन्दु उपनिषद, मण्डल-ब्राह्मण उपनिषद, योग-शिक्षा उपनिषद, योग-तत्त्व उपनिषद, योग-चूड़ामणि उपनिषद, जाबाल उपनिषद, गोरक्ष उपनिषद, नाथ-सूत्र, शिव-गीता, अवधूत-गीता, शिव-संहिता, सूत-संहिता, घेरण्ड

संहिता, हठयोग प्रदीपिका प्रमुख हैं। बंगला, राजस्थानी, पंजाबी, तमिल, उड़िया, कन्नड़, आदि प्रादेशिक भाषाओं में नाथपंथी योगियों की रचनाओं का अध्ययन भी नाथपंथ के सामाजिक-दर्शन को समझने में अत्यधिक सहायक होंगे। यह पुस्तिका अभी हिन्दी-संस्कृत-बज्र-अवधी में उपलब्ध नाथपंथ के साहित्य के आधार पर नाथपंथ का समाज-दर्शन रेखांकित करने के सामान्य प्रयास का प्रतिफल है। यह पुस्तिका गोरक्षनाथ एवं नाथपंथ के 'समाज-दर्शन' पर शोध-कार्य करने का आधार प्रदान करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

भारत के सामाजिक-जीवन में धर्म-अध्यात्म जीवन-पद्धति का अमूल्य हिस्सा है तो 'जाति' भारतीय समाज का दर्पण है। 'जाति-व्यवस्था' के श्रेष्ठतावादी-विचार दर्शन से भारतीय समाज में ऊँच-नीच की भावना का जन्म हुआ। ऊँच-नीच के इसी विचार की कोख से छुआ-छूत का जन्म हुआ। बड़ा-छोटा एवं छूत-अछूत की विकृतियों ने भारतीय जाति-व्यवस्था को कटघरे में खड़ा किया। हिन्दू समाज के सभी मानवतावादी सिद्धान्त एवं दर्शन पर अस्पृश्यतावादी जाति-व्यवस्था भारी पड़ती है। हिन्दू-समाज की इसी विकृति का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने 'बाँटों और राज करो' की नीति अपनाई। हिन्दू-समाज की इसी कुरीति का प्रतिफल था भारत पर इस्लामी सत्ता की स्थापना।

भारतीय समाज की ऊँच-नीच एवं अस्पृश्यतावादी जाति-व्यवस्था के खिलाफ समय-समय पर हमेशा भारतीय समाज के अन्दर से ही आवाज उठती रहती है। इस सामाजिक कुरीति के खिलाफ गोरखनाथ ने न केवल आवाज उठायी, अपितु मौलिक भारतीय समाज-दर्शन का पुनः प्रकटीकरण किया। नाथपंथ के योगियों ने महायोगी गोरक्षनाथ के 'समरस-समाज-दर्शन' को ही आगे बढ़ाया और इसी की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु नाथपंथ के योगी आज तक अभियानरत है।

'नाथपंथ का समाज-दर्शन' नामक यह पुस्तिका नाथपंथ की योगी-परम्परा के प्रयत्नों की अति-संक्षिप्तिका है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तिका 'नाथपंथ के समाज-दर्शन' पर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने एवं शोध-कार्य किए जाने को प्रोत्साहित करने में सफल होगी।

वर्ष प्रतिपदा, विक्रम संवत् 2075 — **– प्रदीप कुमार राव**

दिनांक 6 अप्रैल, 2019

अनुक्रम

1.	प्राक्कथन	
2.	समाज बदलने आए गोरख	.. 9
3.	पाखण्ड एवं रूढ़ियों के विरुद्ध अभियान	.. 12
4.	जातीय श्रेष्ठतावाद को नकारा नाथपंथ ने	.. 16
5.	गोरख ने दिया उपासना का सर्वसुलभ सहज योग	.. 19
6.	मृत्यु पर जय से मोक्ष तक का सहज मार्ग	.. 22
7.	समाज की सिसकी न सुनी तो सिद्धि–साधना व्यर्थ	.. 25
8.	क्रियात्मक योग	.. 28
9.	श्री गोरखनाथ की महन्त–परम्परा एवं उसका युगधर्म	.. 31
10.	सेवा भी जहाँ साधना है	.. 34
11.	पूर्णता एवं संतोष का संदेश है महायोगी की खिचड़ी	.. 37
12.	परिशिष्ट	.. 40

समाज बदलने आए गोरख

महायोगी गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ के नाथसिद्धों, नवनाथों और चौरासी सिद्धों का आविर्भाव तथा विचारकाल सामान्यः नवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक माना जाता है। यह युग भारतीय धर्म-साधना में उथल-पुथल का युग था। सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में भारत की सनातन संस्कृति के प्रतिकूल अनेक विकृतियाँ एवं चुनौतियाँ उभर चुकी थीं। इस्लाम एक पांथिक शक्ति के साथ-साथ आक्रमणकारी राजनीतिक ताकत के रूप में भारत में प्रवेश कर रहा था। भारत की धार्मिक-आध्यात्मिक जीवन में तन्त्र-मंत्र, टोने-टोटके प्रभावी होते जा रहे थे। बौद्ध साधना पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ चुका था। बौद्ध, शाक्त, शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के बीच आपसी मतभेद एवं कटुता बढ़ती जा रही थी।

भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता स्वयं शुद्धिकरण की है। भारत के धार्मिक-आध्यात्मिक-सामाजिक जीवन में जब-जब जटिलता, कर्मकाण्ड, पाखण्ड, रूढ़िवादिता प्रभावी हुई, इनके विरुद्ध भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों के पुनर्जागरण हेतु भारतीय समाज खड़ा हुआ। इन्हीं परिस्थितियों में समय-समय पर समाज का नेतृत्व करने के लिए महापुरुषों का अभ्युदय हुआ। समाज का मार्गदर्शन करने हेतु वैचारिक आन्दोलन चले। कुछ वैचारिक आन्दोलन पांथिक स्वरूप ग्रहण कर संगठित स्वरूप में भारतीय संस्कृति के वाहक बने। महायोगी गोरखनाथ का अभ्युदय एवं उनके द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ इन्हीं परिस्थितियों की उपज था।

महात्मा बुद्ध ने जिस वैचारिक अधिष्ठान पर बौद्ध मत का प्रतिपादन किया, लगभग हजार वर्ष बीतते-बीतते वह वैचारिक आन्दोलन भी उन्हीं रूढ़ियों, कुरीतियों और पाखण्डों का शिकार हुआ जिनके गर्भ

से उसका जन्म हुआ था। आचार–विचार की शुद्धता तार–तार हो रही थी। वामाचार, तन्त्रवाद एवं अनाचार के शिकार बौद्ध मत अनुयायी तामसी–विलासी– कामुकतापूर्ण कलुषित जीवन का समर्थक दिखने लगे। परिणामतः बौद्ध मत से सामान्य–जन का विश्वास डिगने लगा।

बौद्ध मत के ह्रास एवं पतन की परिस्थितियों में वैदिक मत की विविध धाराएँ अपनी पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयत्न में सफल होने का प्रयत्न कर रही थीं। विशेष कर वैष्णव–शैव मत अपने नए कलेवर, वैचारिक शुद्धता और आत्मा–परमात्मा के सम्बन्धों पर विविध दार्शनिक व्याख्याओं के साथ वैदिक संस्कृति को लोकप्रिय बनाने में प्रयत्नरत थे। किन्तु इस प्रयत्न में भारतीय समाज में रूढ़िगत स्वरूप में विकसित होने वाली जाति–व्यवस्था सबसे बड़ी बाधा थी।

कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था बहुत पहले ही जन्माधारित जाति–व्यवस्था का रूप ग्रहण कर चुकी थी। जाति–व्यवस्था में ऊँच–नीच के साथ–साथ अस्पृश्यता धीरे–धीरे बढ़ती जा रही थी। एक तरफ बौद्धमत का पतन और दूसरी तरफ जाति–व्यवस्था में ऊँच–नीच, छुआ–छूत जैसी विकृतियों से पीड़ित भारतीय समाज एक ऐसे धार्मिक–आध्यात्मिक नायक को खोज रहा था जो एक बार फिर सहज जीवन का ऐसा मार्ग दिखाए जो उसे लौकिक जीवनानन्द के साथ पारलौकिक जीवन का मार्ग भी प्रशस्त करे।

बौद्ध युग के बाद यह युग एक बार फिर सामाजिक क्रान्ति की दहलीज पर खड़ा था। भारत के धार्मिक–आध्यात्मिक जीवन में उथल–पुथल के साथ–साथ जाति व्यवस्था में ऊँच–नीच एवं छुआ–छूत से आक्रान्त समाज में एकरसता की डोर कमजोर होती जा रही थी। समाज विखण्डन का शिकार हो रहा था।

राष्ट्रीय–सामाजिक एकता की पुनर्प्रतिष्ठा समय की माँग थी। धर्म–अध्यात्म के सात्विक स्वरूप के पुनर्स्थापना के साथ उसके प्रति

सामाजिक आस्था उत्पन्न करना भारतीय संस्कृतिक की सनातन धार्मिक–आध्यात्मिक परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए अपरिहार्य था। दु:ख से मुक्त आनन्द एवं सुख की खोज में भटकती मानवता को सर्वस्वीकार्य पथ चाहिए था। भारत की सनातन संस्कृति में सर्व प्रतिष्ठित जीवन–मूल्य 'सदाचरण' को समाज में प्रतिष्ठा चाहिए थी। महायोगी गोरखनाथ इसी कार्य हेतु भारत की पावन भूमि पर अभ्युदित हुए। महायोगी भारत में अपनी यौगिक क्षमता का चमत्कार दिखाने नहीं समाज बदलने आये थे। इस महायोगी ने भारतीय समाज में सदाचरण पर आधारित योग केन्द्रित जन–सामान्य के लिए सुलभ मोक्ष मार्ग के दार्शनिक–व्यावहारिक अधिष्ठान पर उसी सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया जो उससे हजार वर्ष पूर्ण महात्मा बुद्ध–महावीर जैन ने प्रारम्भ की थी। दया–करुणा, परपीड़ाहरण के साथ सामाजिक विकृतियों के खिलाफ तनकर खड़े गोरखनाथ ने विश्व–बन्धुत्त्व, विश्वप्रेम, सहानुभूति, मानव–मानव की समानता, जीव–मात्र के जीवन की पवित्रता, न्याय एवं स्वतन्त्रता के अधिकार, सत्य का आदर, नि:स्वार्थ सेवा, मानव जाति की एकता, ब्रह्माण्ड की एकता, मानवजाति को उच्च से उच्चतर सभ्यता की ओर से जाने वाले धार्मिक–आध्यात्मिक दर्शन का प्रतिपादन किया। गोरखनाथ और उनके नाथपंथी योगियों ने मानव–जाति को सिखाया– आत्मसंयम आत्मतुष्टि से श्रेष्ठ है, बलिदान योग से महान है, आत्म विजय दूसरों की विजय से श्रेष्ठ है; आध्यात्मिक उन्नति भौतिक उन्नति से महान है, विश्वप्रेम सर्वनाशी पाशविक शक्ति से कहीं श्रेष्ठ है; आत्मा के शाश्वत हित में संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु का त्याग श्रेष्ठतर है।

महायोगी गोरखनाथ ने न केवल वैचारिकी एवं दर्शन का प्रतिपादन किया अपितु योगियों की एक ऐसी श्रृंखला खड़ी की जिन्होंने उनके विचार–दर्शन को लोकभाषा में जन–जन तक पहुँचाया। जातियों में ऊँच–नीच एवं भेद–भाव की दीवारें तोड़ दी। सभी के लिए ईश्वर तक

जाने का सहज–सरल योग–मार्ग प्रतिष्ठित कर दिया। धर्म–आध्यात्म का द्वार सभी के लिए एक समान रूप से खोल दिया। पूजा–पाठ अथवा उपासना पद्धतियों की जटिलताएँ समाप्त कर दी। तन–मन को स्वस्थ रखते हुए ऐहिक जीवन के आनन्द के साथ पारलौकिक जीवन के प्रश्नों का सहज उत्तर प्रस्तुत किया। सदाचरण एवं लोक–कल्याण को धर्म–अध्यात्म का मूलमंत्र बनाया। वस्तुतः महायोगी गोरखनाथ इस धरती पर भारत की सनातन संस्कृति को पुनर्जीवन देने के लिए समाज बदलने आए। भारत में एक नयी सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात करने आए और इसमें इस महायोगी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

पाखण्ड एवं रूढ़ियों के विरुद्ध अभियान

गोरखनाथ के अभ्युदय के समय भारतीय समाज में विघटन और विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ विकसित हो चुकी थीं। अपरिपक्व शरीर और स्वेच्छाचारी मन के भिक्षुओं एवं श्रमणों का बोलबाला था। शूद्र के रूप में तिरस्कृत समूह एवं स्त्रियों की दशा हीन होती जा रही थी। सनातन धर्म एवं संस्कृति के मौलिक तत्त्व एवं जीवन-मूल्य ग्रन्थों में सीमित हो चुके थे। धर्माचार्यों, बौद्ध भिक्षुओं तथा श्रमणों द्वारा भोग-विलास की धर्माधारित नयी व्याख्या दी जा रही थी। सुरा-सुन्दरी के उपभोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा था। देव-मंदिरों में बलि-पूजा जोरों पर थी। मठ-मन्दिर अकूत धन-सम्पत्ति इकट्ठा करने के केन्द्र बन चुके थे। पंच-मकार अर्थात् मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा तथा मैथुन को उपासना एवं देवपूजा का आवरण पहनाया जा चुका था। बौद्ध-साधना में योनि-पूजा और योनिभोग को स्वीकृति मिलती जा रही थी। बज्रयान, बोधिसत्त्व और चक्र-पूजा में उक्त का उपयोग आवश्यक माना जाने लगा था। शैव कापालिकों मे भी यही प्रवृत्ति विकसित हो चुकी थी। इन पाखण्डी धर्माचार्यों का तर्क था कि तृप्त योगी ही सही त्यागी हो सकता है। अतृप्त आत्माएँ ही बन्धन युक्त होकर बार-बार जन्म ग्रहण करती हैं। अतः वैराग्य के लिए हर प्रकार से तृप्ति आवश्यक है।

भारत का पूर्वमध्ययुगीन समाज इन रूढ़िवादी, पाखण्डी एवं भोग-विलासी उपासना पद्धतियों का तेजी से शिकार हो रहा था। पूजा-पाठ एव तन्त्र-मंत्र की रूढ़िवादी-पाखण्डी धारा का प्रवाह प्रबल होता जा रहा था। इस तामसिक पूजा पद्धति के विरोध का साहस न तो कोई राजा कर पा रहा था न ही दूसरी कोई सामाजिक-धार्मिक संगठित शक्ति थी जो राष्ट्र-समाज हित में इस पाखण्ड के विरुद्ध खड़ा हो सके। इन्हीं विषम परिस्थितियों में गोरखनाथ ने न केवल गिरते हुए तामसिक जीवन

के उन्नयन हेतु, विमुख धार्मिक चेतना को जाग्रत करने तथा सामाजिक जीवन में शुद्धता, सात्त्विकता एवं सन्तों-साधुओं में अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना भरने के लिए पाखण्डी धर्माचार्यों, समर्थ सामन्तों एवं तामसिक उपासना की इस प्रबलधारा में बह रहे साधकों को ललकारा अपितु परमार्थ, लोक-कल्याण एवं सदाचरण का वह धर्मपथ पुनः प्रकाशित किया जो भारत की सनातन संस्कृति का प्राणतत्त्व है। गोरखनाथ ने मांस-मदिरा का परित्याग एवं संयमित आहार पर जोर दिया। काम, क्रोध, अहंकार, मन-माया, विषय-विकार, तृष्णा, लोभ और जीव हिंसा के परित्याग को धर्म एवं उपासना का मूल आधार घोषित किया। गोरखनाथ जी का यह वचन अति लोकप्रिय हुआ कि मन सबसे प्रबल है, यही शिव है, यही शक्ति है, यही पंचतत्त्वों से निर्मित जीव है। जो इस मन पर नियन्त्रण कर उन्मनावस्था में लीन हो जाते हैं वहीं तीनों लोकों के रहस्य को जान लेते हैं। यथा -

यहु मन सकती यहु मन सीव। यहु मन पांच तत्त का जीव।
यहु मन ले जै उनमन रहे। तो तीनि लोक की बातां कहै।।

संयमित आचार-विचार एवं संयमित जीवन निर्वाह का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए गोरखनाथ हँसते-खेलते, गाते-बजाते हुए आनन्दपूर्वक दृढ़ता के साथ चित्त को संयमित रखने का उपदेश करते हैं। अल्पाहार के साथ योगाभ्यास को आवश्यक मानते हुए गोरखनाथ ने स्वस्थ मन, दृढ़ चित्त के साथ तन की स्वस्थता को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण माना। गोरखनाथ ने बोलने की अपेक्षा सुनना, संयमित व्यवहार एवं सत्संग को जीवनोत्कर्ष के लिए आवश्यक माना।

गोरखनाथ ने उन साधकों धर्माचार्यों, उपासकों को सन्मार्ग दिखाया जो योगी होने का ढोंग करते थे, किन्तु मोह-माया के जाल में फँसकर साधना के नाम पर घृणित कर्म करते थे। गोरखनाथ ने पाखण्ड का डटकर विरोध किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''गोरक्षनाथ

ने निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण–विचूर्ण कर दिया। लोक जीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धों से आकर उसके पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी उसे गोरक्षनाथ ने नई प्राणशक्ति से अनुप्राणित किया। किसी भी रूढ़ि पर चोट करते समय उन्होंने दुर्बलता नहीं दिखाई। उन्होंने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।''

गोरखनाथ ने भारतीय धर्म–अध्यात्म–साधना में पाखण्ड एवं कुरीतियों के विरुद्ध जिस सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात एवं सदाचरण, सच्चरित्रता, सहजता, सरलता के साथ योग–मार्ग का प्रतिपादन किया उसे नाथपंथी योगियों ने अनवरत आगे बढ़ाया। नव–नाथ एवं चौरासी सिद्धों से लेकर अद्यतन नाथपंथ के योगी योगमय अपने कठोर जीवन, अखण्ड ब्रह्मचर्य के साथ सहज, सरल उपासना पद्धति के वाहक हैं। पाखण्ड एवं रूढ़ियों के विरुद्ध सदैव तनकर खड़ा होने का साहस करते हैं।

जातीय श्रेष्ठतावाद को नकारा नाथपंथ ने

पूर्व मध्ययुग अर्थात् छठवीं शताब्दी ईस्वी से 12वी शताब्दी ईस्वी के कालखण्ड में भारत में कई इस्लामी आक्रमण हुए। यह युग भारत के तेजी से बदलते सामाजिक परिवेश का युग है। इसी युग में भारतीय समाज में धार्मिक एवं उपासना पद्धतियों के नाम पर पाखण्ड एवं आडम्बर बढ़े तो दूसरी तरफ जातियों में उपजातियों का तेजी से निर्माण हुआ। जाति व्यवस्था ऊँच–नीच एवं छुआ–छूत की विकृति का शिकार हुयी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण जन्माधारित जाति में रूढ़ हो ही रहे थे, इनमें भी विखण्डन एवं विभाजन की प्रवृत्ति हावी थी। अनेक विदेशी जातियों के भारतीय समाज में समन्वीकरण ने भी जातीय विखण्डन एवं उपजातियों के निर्माण में भूमिका निभाई। इस युग के जाति–व्यवस्था पर अलबरूनी के किताबुलहिन्द एवं चन्दबरदाई के पृथ्वीराजरासों में विस्तृत विवरण मिलता है।

यह युग जातीय विखण्डन के कारण जातीय अस्तित्व एवं शुद्धता को लेकर काफी संवेदनशील युग है। ब्राह्मण अपनी सांस्कारिक शुद्धता, रूढ़िवादिता और धर्मान्धता को अपनी विशिष्टता एवं श्रेष्ठता का आधार मानते थे तो क्षत्रिय अपने शौर्य–पराक्रम की श्रेष्ठता के अहंकार में डूबे थे। वैश्यों के बीच से कायस्थ जाति का उद्भव हो चुका था और वे शासन–प्रशासन में अपनी लिखा–पढ़ी के आधार पर जगह बना चुके थे। जातीय श्रेष्ठतावाद से भारतीय समाज में ऊँच–नीच की एक गहरी खाई बनती जा रही थी। ब्राह्मण–क्षत्रिय पौरोहित्य एवं राज्य के बल पर अपनी श्रेष्ठता पूरे समाज पर जबरन थोप भी रहे थे। समाज में इनके द्वारा घोषित शूद्र के अन्तर्गत आने वाली वे जातियाँ जिनके कौशल एवं परिश्रम पर समाज जी–खा रहा था वे नीच और अछूत घोषित की जा रही थीं।

देबल एवं लक्ष्मीधर ने ब्राह्मणों की अनेक उपजातियों का उल्लेख किया है। अत्रिस्मृति तथा मिनतकसार ने ब्राह्मणों की दस

श्रेणियों– देवा, मुनि, हिज, राज्य, वैश्य, शूद्र, मरजरा, पशु, म्लेच्छ तथा चाण्डाल– का उल्लेख किया है। क्षेत्रीय आधार पर भी ब्राह्मणों की अनेक उपजातियाँ, यथा बंगाल मे वन्ध्यधतिया, चम्पहटिया, इकिया, बरेन्द्र, वैदिक का उल्लेख है। द्राविड़ और उत्कल से आए दक्षिणत ब्राह्मण कहलाए। बिहार में मैथली, सकद्वीपी, गवावाल, मग, गौड़; उत्तर प्रदेश में कन्नौजिया, सरयूपारीय तथा कश्मीर के कश्मीरी ब्राह्मण कहे जाने लगे थे। स्पष्ट है कि जातियों के अन्दर भी ऊँच–नीच का भाव प्रबल होने लगा था।

क्षत्रियों की भी उत्तर भारत में ही 36 जातियों का उल्लेख मिलने लगता है। पृथ्वीराजरासो में चन्द्रबरदायी ने छत्तीस क्षत्रिय जातियों का उल्लेख किया है। विद्वानों ने इस सूची को आठ अलग–अलग सूचियों में प्रकाशित किया है। इनमें दस सूर्यवंशी, दस चंद्रवंशी, चार अग्निवंशी और बारह अन्य माने गये हैं। स्पष्ट है कि क्षत्रियों में भी जातिगत विभाजन हो चुका था और उनमें भी ऊँच–नीच की भावना प्रारम्भ हो चुकी थी।

अलबरूनी लिखता है समाज में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का दूसरा स्थान था। इब्नखुदवर्दा के अनुसार क्षत्रिय दो वर्ग सवकफुरिया तथा कहरिया में विभाजित थे। क्षत्रियों में भी ऊँच–नीच की भावना घर कर गयी थी। इसी प्रकार वैश्यों एवं शूद्रों में भी अनेक जातियों एवं उपजातियों का विकास हो चुका था। जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह के अनुसार गुजरात तथा राजस्थान में ही श्रीमाली, प्रागवत, उपकेश, घरकटा, पल्लखाल, मोध, गूजर, नागर, दिसवाल, औद, दुम्बाल वैश्यों की प्रमुख जातियाँ थी। अलबरूनी की माने तो ग्यारहवीं शताब्दी तक वैश्यों और शूद्रों में कोई अन्तर नहीं रह गया था।

अभिदान चिन्तामणि, देसीनमामला तथा विजयन्ती जैसे ग्रन्थों में शूद्र कहे जाने वाले मजदूर, लोहार, पत्थर काटने वाले, शंख बनाने वाले, कुम्हार, जुलाहा, बढई, चर्मकार, तेली, ईंट बनाने वाले, स्वर्णकार, जौहरी, ताँबे का काम करने वाले, चित्रकार, बोझा ढोने वाले, भिश्ती,

दर्जी, धोबी, कलाल, मदिरा बेचने वाले, माली, घूम-घूम कर वस्त्रों के विक्रेता, शिकारी, चाण्डाल, नर्तक, अभिनेता इत्यादि का उल्लेख मिलता है। वैजयन्ती के अनुसार शूद्रों की 64 जातियाँ थी।

उपर्युक्त जातियों, उपजातियों और उनके बीच ऊँच-नीच के प्रबल होते भाव के बीच भारतीय समाज में बिखण्डनकारी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। इससे समाज और राष्ट्र निरन्तर कमजोर हो रहा था। नाथपंथ के प्रवर्तक महायोगी गोरखनाथ इस जाति व्यवस्था के ऊँच-नीच एवं छुआ-छूत जैसी कुरीतियों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने घोषित किया कि ये कुरीतियाँ शास्त्र-सम्मत नहीं है। उन्होंने सभी के लिए योग का एक ऐसा सहज मार्ग प्रतिपादित किया, जो बिना भेद-भाव के ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता था और जिस पथ पर चलकर सभी मोक्ष के अधिकारी थे। नाथपंथ समरस समाज की स्थापना में धार्मिक-आध्यात्मिक दर्शन का न केवल प्रतिपादन किया अपितु सभी जातियों के लिए धर्म-अध्यात्म-योग को सुलभ बना दिया। गोरखनाथ की इसी अभियान का परिणाम था कि भक्ति आन्दोलन में नीच कही जाने वाली जातियों के भक्त ताल ठोककर आगे आए। नाथपंथ में भी बड़ी संख्या में नीच कही जाने वाली जातियों के लोग दीक्षित हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि 84 सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दर्जी तथा और बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। यहाँ तक कि बड़ी संख्या में इस्लाम के अनुयायी भी नाथपंथ में दीक्षित हुए। नाथपंथ के प्रभाव में ही सूफी मत विकसित हुआ। महायोगी गोरक्षनाथ एवं नाथपंथी योगियों ने भारतीय जाति व्यवस्था में कोढ़ की तरह व्याप्त जाति व्यवस्था के ऊँच-नीच, छुआ-छूत के विरुद्ध जो अभियान चलाया उसी का परिणाम था कि भारत की सामाजिक-राष्ट्रीय चेतना में एकता के सूत्र बचे रहे।

गोरख ने दिया उपासना का सर्वसुलभ सहज योग

पूर्व मध्ययुगीन भारतीय समाज में उपासना पद्धति में जटिलता आ चुकी थी। तथाकथित उच्च वर्गीय समाज मे पौरोहित्य प्रभाव के कारण भगवान की भक्ति और उनकी पूजा एक तरफ जहाँ कठिन तंत्र-मंत्र युक्त महँगे एवं व्ययसाध्य विधान के गिरफ्त में थी तो दूसरी तरफ समाज का एक वर्ग बौद्ध साधना में आयी तन्त्रवादी विकृति का शिकार हो रहा था। अन्य उपासना पद्धतियाँ भी इन्हीं के प्रभाव में जटिल, पाखण्डपूर्ण और व्यय साध्य होती जा रही थीं। सामान्य जीवन जीते हुए, पारिवारिक-सामाजिक दायित्त्वों का निर्वहन करते हुए परमात्मा को प्रसन्न करने के सहज-सरल उपासना के मार्ग लगभग बन्द हो चुके थे। फलतः उपासना एवं धर्म से समाज कटता जा रहा था। आध्यात्मिकता हासिए पर जा रही थी। भगवान और सामान्य जन के मध्य पूजा-पाठ कराने वाले पण्डित, बौद्ध भिक्षु एवं अन्य उपासना विधियों के तथाकथित पुजारी अपरिहार्य हो चुके थे। उन्हें ही माध्यम बनाकर अर्थात् उनके उपासना-विधिक सहयोग से ही अपने भगवान को प्रसन्न किया जा सकता था या परमात्मा तक पहुँचा जा सकता था। इसमें भी समाज में जाति के नाम पर कुछ लोगों को धार्मिक उपासना के अनेक विधि-विधानों से वंचित किया जाने लगा था। जाति आधारित उपासना एवं कर्मकाण्डों का विधान किया जाने लगा था। गोरखनाथ ने एक झटके से उपासना विधियों एवं कर्मकाण्डों की जटिलता को नकारते हुए वंचित एवं उपेक्षित समाज को मुक्ति का मार्ग दिखा दिया। महायोगी गोरखनाथ ने अपने-अपने आराध्य अथवा ईश्वर अथवा परमातत्त्व तक सीधे पहुँचने का ऐसा सरल मार्ग दिया जहाँ किसी मध्यस्थ की जरूरत नहीं थी। योगी बनने के लिए एक मात्र गुरु आवश्यक था जबकि गृहस्थों के

लिए सदाचरण एवं योग की सहज विधियाँ पर्याप्त थीं।

गोरखनाथ ने पातंजल योग दर्शन को युगसम्मत बनाकर एक जीवन्त योगाचार प्रस्तुत किया। भगवान शिव के साथ-साथ काली (शक्ति), गणेश, हनुमान इत्यादि देवी-देवताओं की उपासना हेतु भी योग-ध्यान का मार्ग पर्याप्त था। गोरखनाथ ने समस्त तार्किक विश्लेषण के ऊपर उठकर समतत्त्व की प्रतिष्ठा की। यह 'समतत्त्व' ही परमतत्त्व, परासंवित, परब्रह्म, परमपद, परमशून्य, परशिव इत्यादि सभी विविध रूपों में समाहित था। यह मार्ग तत्त्व-चिन्तन से अधिक आनुभूतिक-व्यावहारिक सच्चाई, चारित्रिक निष्ठा एवं मानसिक निर्मलता पर प्रतिष्ठित था, जो विशुद्ध व्यक्तिगत प्रयत्न से पाया जा सकता था। गोरखनाथ ने समाज को उपासना एवं धर्म का ऐसा सहज-सरल रूप प्रदान किया जिसे पाने के लिए किसी को न कहीं जाना था और न किसी से मांगना था। बस सदाचरण एवं प्रत्येक स्वांस के जाप से सत्-चित-आनन्द पाया जा सकता था।

महायोगी गोरखनाथ जी ने सामान्य जनों को, गृहस्थों को संयम से रहने का, अतियों को छोड़कर मध्यम मार्ग ग्रहण करने का, कथनी-करनी के अविरोध का, दया-दान, शीलाचरण का उपदेश किया और यह विश्वास दिलाया कि इसी सदाचरण से सुख-शान्ति मिलेगी और परमात्मा प्राप्त होंगे। गोरखवाणी में ऐसे उपदेश भरे पड़े हैं। कथनी-करनी पर बल देते हुए गोरखनाथ जी योगवाणी में कहते हैं- कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी। वे आगे पुनश्च कहते हैं-

कहणि सुहेली रहणि दुहेली बिन सायां गुण मीठा।
खाई हींग कपूर वषाणें गोरष कहे सब झूठा।

गोरखनाथ जी ने सत्य, शील, दान औद दया जैसे व्यावहारिक गुणों के जीवन में उतारने को ही पूजा माना। इसी के पालन का उन्होंने योगी से लेकर सामान्य जन को पालन करने का उपदेश किया। वे

गोरखवाणी में कहते है– सत्यों सीलं दोयं असनान, जोग का मूल है दाय दानं, सहज सील का धरै सरीर। गोरखनाथ अहंकार से बचने तथा धैर्य, शालीनता और स्थिरता का उपदेश देते हुए गोरखवाणी में कहते हैं–

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पावं।
गरब न करिबां सहजै रहिबा भणत गोरख रावं।।

गोरखनाथ ने धर्म के नाम पर खड़े किए गए वितण्डावाद से त्रस्त जनता को योग का मंत्र देते हुए कहा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया छोड़ो, प्राणायाम एवं सामान्य आसन करो, तन के साथ मन की साधना से शान्त चित्त होकर समाधि अवस्था तक पहुँचों, निराकार, निरंजन, अलख की वह ज्योति मिलेगी और वहीं से आगे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होगा।

महायोगी गोरखनाथ ने उपर्युक्त जीवनोपयोगी एवं सभी के लिए स्वयं के शारीरिक–मानसिक दिनचर्या के प्रयत्न से ही योग और योग के माध्यम से धर्म और फिर मुक्ति पाने का मार्ग दिखाया। ऐसी उपासना पद्धति विकसित की, जिसमें किसी विशेष भाषा और ज्ञान की अपरिहार्यता नहीं थी। सब कुछ जीवनचर्या का हिस्सा था। ऐसी पद्धति जो तन को स्वस्थ रख सकती थी, मन को शान्त और स्थिर करती थी तथा चित्त को आनन्द देती थी। अपने इसी सहज मार्ग के कारण गोरख भारत ही नहीं अपितु आस–पास के देशों की जनता के दिलों के विजेता बनें। राजा से लेकर फकीर तक नाथपंथ की योगधरा में प्रवाहमान हुए।

मृत्यु पर जय से मोक्ष तक का सहज मार्ग

सभ्यता एवं संस्कृति के उद्भव के साथ ही मानव ने मृत्यु का साक्षात्कार किया। जन्म-मृत्यु उसके विचार-दर्शन का सदैव केन्द्र बिन्दु रहा। दुनिया की सभी उपासना-पद्धतियों, पांथिक विचार-दर्शनों एवं दार्शनिकों ने 'मृत्यु के बाद के संसार' को अपने-अपने अनुभव, तर्क और ज्ञान के आधार पर समझने और समझाने का प्रयत्न किया है। अपनी साधना एवं तपस्या के बल पर भारतीय ऋषियों ने भी ऐहिक जीवन के साथ-साथ पारलौकिक जीवन अर्थात् मृत्युलोक एवं परलोक को समझने, जानने और देखने का बहुविधि प्रयत्न किया। अन्ततः भारतीय सनातन संस्कृति ने जीवन का अन्तिम उद्देश्य या यो कहें जीवन का साध्य 'मोक्ष' अर्थात् 'जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति' को माना। भारत की सभी प्रमुख पांथिक-धाराओं एवं विचार-दर्शनों ने इस 'मोक्ष' के स्वरूप को अपने-अपने ढंग से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है तथा इसे प्राप्त करने के मार्ग सुझाएं है।

ऐहिक जीवन में सुख-सम्पत्ति तथा पद-प्रतिष्ठा पाने हेतु देवोपासना में शरणागत मनुष्य अन्ततः जीवन के अन्तिम सोपान पर 'मोक्ष' अथवा 'मुक्ति' हेतु लालायित हो जाता है। साधु-सन्त, योगी, ज्ञानी, अज्ञानी, गृहस्थ सभी को अन्ततः 'मोक्ष' या मुक्ति का अमृत घट चाहिए, जिसे प्रत्यक्ष दिखा पाने में आज तक मनुष्य सफल नहीं हो पाया है। परलोक की इस अदृश्य दुनिया की यात्रा कराने के लिए देवी-देवाओं को प्रसन्न करने के नाम पर भी उपासना-पद्धतियों में पाखण्ड-आडम्बर बढ़े। सामान्यतः भारतीय समाज में छुआ-छूत की विकृति आ जाने के कारण भारत के सामाजिक जीवन में अछूत कहे जाने वाले, अनेक उपासना पद्धतियों से वंचित समाज को मोक्ष का अधिकारी ही नहीं माना गया।

नाथपंथ के प्रवर्तक महायोगी गोरखनाथ ने सभी के लिए 'मुक्ति' अर्थात् 'मोक्ष' पाने का सहज मार्ग प्रस्तुत किया। गोरख का 'योग' ऐहिक-पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन पर विजय पाने का मार्ग है। गोरक्ष-सिद्धान्त-संग्रह में कहा गया है-शिवभाषित कैवल्यरूप मोक्ष सिद्धमार्ग में सुलभ है। यह निष्कल, निर्मल, स्वात्मप्रकाश जीवरूप में अवभासित है- स्वात्मप्रकाश रूपतत् किंशास्त्रेण प्रकाश्यते। गोरखनाथ कहते हैं काम, क्रोध, भय और चिन्ता द्वारा आवृत्त होने से मुक्त होने की अवधि तक जीव को शिवत्व अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं होता। केवल ज्ञान से भी सिद्धि नहीं पायी जा सकती। गोरखनाथ कहते हैं- मात्र ज्ञान या शास्त्रों द्वारा कामक्रोधादि पर विजय पाना सम्भव नहीं है, योग के द्वारा ही कामक्रोधादि विषयजनित प्रवृत्तियों पर विजय पायी जा सकती है। अतः योग के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

योगबीज में उल्लेख मिलता है कि- एक बार माँ पार्वती ने भगवान शिव से पूछा- 'अज्ञान से संसार की सत्ता है और ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। फिर योग का प्रयोजन क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान शिव के माध्यम से 'योगबीज' ग्रन्थ कहता है- स्वात्मस्वरूप परिपूर्ण है। इसी पूर्णता के कारण वह सकल और निष्कल अर्थात् अंशयुक्त और अंशहीन कहा जाता है। संसारभ्रम के कारण अज्ञानी संसारी जीव कलायुक्त स्वरूप मोह के सागर में पतित होता है। ज्ञानी भी अपने ज्ञान-संसार की वासना में लिप्त हो जाता है। अतः योग के बिना ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ, इन्द्रियजयी के लिए भी मुक्ति सम्भव नहीं है।

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोदपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
विनायोगेनदेवोदपि न मोक्षं लभते प्रिये॥

नाथपंथी दर्शन ने प्रत्येक मनुष्य के जीवन की चार अवस्थाओं का उल्लेख करता है-

(1) गुरु की कृपा से पौरुष और अज्ञान का नाश।

(2) अपनी साधना द्वारा इस जन्म में बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना।

(3) बौद्धिक ज्ञान के उदय से बौद्धिक अज्ञान का नाश।

(4) पौरुष ज्ञान का उदय।

इन चार अवस्थाओं के द्वारा मानव योग में प्रवृत्त होकर मुक्ति पथ का पथिक बनता है। योगपथ के राही का ज्ञान भी मुक्त होता है। काल उसके अधीन होता है। इसलिए मृत्यु उसकी इच्छा पर निर्भर होती है। इसी योग के बल पर योगी अजरत्त्व और अमरत्त्व प्राप्त करता है। नाथपंथ में सामान्य जन से लेकर इच्छा-मृत्यु प्राप्त करने वाले योगियों के भी चार समूह हैं-

(1) केवल योग का उद्देश्य प्राप्त करने वाले 'सम्प्राप्त'।

(2) योगाभ्यास में तत्पर योगी 'घरमान'।

(3) योगसिद्ध और स्वभ्यस्त 'सिद्धयोगी'।

(4) निर्विकार और व्यवहार भूमि के परे 'सुसिद्ध योगी'।

नाथपंथ ने स्पष्ट किया कि योगाग्नि के बिना मुक्तिलाभ सम्भव नहीं है, इसके बिना वैराग्य जपादि मिथ्या है। सप्तधातुमय देह को योगाग्नि द्वारा तपा कर योगदेह प्राप्त करने वाला मानव जीव-मुक्त, दोषवर्जित, निर्लेप, सदा स्वरूपस्थ होता है। नाथपंथ के अनुसार योग मोक्षप्रद मार्ग है- योगात् परसरो नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः। वस्तुतः नाथपंथ में सभी को योग की साधना के बल पर मोक्ष अर्थात् मुक्ति का मार्ग सुलभ है।

समाज की सिसकी न सुनी तो सिद्धि-साधना व्यर्थ

वह योगी कैसा जिसे सामज की पीड़ा सुनाई न दे। सुनकर वह उसे दूर करने के लिए समाज के साथ खड़ा न हो और उसका मार्गदर्शन न करे। समाधान तक सामाजिक-संघर्ष का साथी न बने। यदि ऐसा नही है अर्थात् दु:ख-दर्द अथवा पीड़ा से उत्पन्न समाज की सिसकी न सुनी तो सारा ज्ञान, सारी साधना और सिद्धियाँ व्यर्थ हैं। इसी समाज-दर्शन पर केन्द्रित नाथपंथी प्रमुख योगियों ने अपनी आध्यात्मिक साधना को लक्ष्य करते हुए सामाजिक चेतना से कभी अपने को विरत नहीं किया। नाथपंथ के युग प्रवर्तक योगी योग-साधना के मार्ग में अविश्रान्त बढ़ते हुए वह अपने व्यक्तित्त्व को निर्मल बनाए हुए दूसरों के अनुकरण योग्य बने रहे। समाज को गतिशील बनाए रखने के लिए आदर्शानुकूल आचरण के वे पक्षधर हैं। कथनी-करनी की एकरूपता नाथपंथी योगियों की विशेषता भी है और वे इस पर पर्याप्त जोर देते हैं। ज्ञान और कर्म की एकरूपता की राही नाथपंथी साधना की चरम परिणति घर-घर व्यापी उस अनन्त चेतना का अनुभव करना और तद्नुरूप व्यवहार करना है।

नाथपंथ मानता है कि समाज और उसकी समस्याओं से भागना साधना नहीं हैं। वास्तविक योग-साधना समाज के संघर्ष को झेलते हुए, समाज को उससे निजात पाने का मार्ग दिखाकर आगे ले जाना है। परमतत्त्व का बोध समाज को संकीर्ण परिधि से बाहर निकालकर ही किया जा सकता है और समाज को भी कराया जा सकता है।

गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित योगमार्ग वह साधना का पथ है जिस पर चलकर सम्प्रदायगत संकीर्ण मनोवृत्तियों का नाश किया जा सकता

है तथा वृहत् संवेदनशील लोककल्याणकारी मानव–समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता है। नाथों का यह अलौकिक व्यक्तित्त्व ही था, जो विजेता बर्बर मुसलमानों को भी अपना अनुयायी बनाने में सफल हुआ। उदाहरण बाबा रतननाथ, बालगुदई और सिद्ध गरीबनाथ के अनुयायी मुसलमान योगियों की श्रद्धाशीलता उल्लेखनीय है। हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य की जिस भावना का प्रबल प्रचार कबीर आदि सन्तों ने किया उसकी नींव नाथपंथी योगियों ने ज्ञान–कर्म की एकरूपता पर आधारित अपनी समाज–केन्द्रित सहज साधना पद्धतियों से पहले ही डाल रखी थी। घट–घट वासी आत्मतत्त्व की सहज आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के साथ प्रेम, करुणा, अहिंसा, संयम और सन्तोष को योग, उपासना एवं भक्ति का अस्त्र बनाकर नाथपंथ के योगियों ने मानव–मानव में एकरसता का संदेश दिया। वे दया एवं करुणा के गीत गाते समाज के लिए अनुकरणीय एवं प्रेरणा स्तम्भ बनें।

गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ ने ज्ञान–कर्म के इसी अपने विशिष्ट अद्वैत सिद्धान्त पर ऊँच–नीच का भेद खत्म किया। धनी हो या दरिद्र, ब्राह्मण हो या शूद्र, बौद्ध हो या जैन, हिन्दू हो या मुसलमान वे सभी को समान दृष्टि से स्वीकार्य उपासना का सहज मार्ग 'योग' का प्रतिपादन किया। गोरखनाथ ने स्वस्थ मन से हँसते–गाते परमतत्त्व की प्राप्ति का सहज मार्ग दिखाते हुए घोषित किया कि काम–क्रोध आदि विकारों से रहित मन योग के बल पर दृढ़ होकर जब आत्मा में झांकता है तो परमात्मा उसे उसी प्रकार दिखाई पड़ता है जैसे जल में चन्द्रमा–आत्मा मध्ये परमात्मां दीसैं ज्यो जल मध्ये चन्दा।

महायोगी गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित यह सहज उपासना पद्धति जिसमें आत्मतत्त्व प्रधान था, जिसमें कोई कर्मकाण्ड एवं विधि–विधान नहीं था, सर्व स्वीकार्य था, सर्वसुलभ था और सभी व्यक्तियों के लिए करणीय था। नाथपंथ की इसी सहज उपासना का समाज दिवाना था।

जन–मन में लोकप्रिय नाथपंथ ने सामाजिक–सांस्कृतिक–आध्यात्मिक परिवर्तन में अपनी प्रभावी भूमिका निभाई।

गोरखनाथ जी कहते है मानव शरीर मन्दिर अथवा मठ है। इस शरीर रूपी मढ़ी में मन रूपी योगी निवास करता है। मन महान योगसाधक है। जिस तरह योगी के शरीर पर कन्था (वस्त्र) रहती है, उसी तरह मन रूपी योगी पाँच तत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, गगन और वायु के संयोग से निर्मित परिधान से आवेष्टित रहता है। काया रूपी मन्दिर में रहने वाले मन रूपी योगी के लिए कर्म ही उसकी पूजा है, यही उसका धर्म है, यही उसका परमात्मतत्त्व तक पहुँचने का साधक है।

क्रियात्मक योग

महायोगी गोरक्षनाथ एवं नाथपंथ के योगियों ने मानव समाज को योग का अमूल्य उपहार दिया। नाथपंथ के इन योगियों ने योग–दर्शन को क्रियात्मक योग में बदलकर सम्पूर्ण मानव समाज को तन–मन को स्वस्थ रखने एवं साधने का अचूक मंत्र दे दिया। इनके पूर्व योग–विद्या कुछ योगियों, मुनियों, सन्यासियों के व्यवहार में तो थी किन्तु समाज के समक्ष यह दर्शन का गूढ़ तत्त्व बना हुआ था। मानव–कल्याण को समर्पित नाथपंथ ने योग–दर्शन एवं साधु–सन्तों, योगियों–मुनियों, तपस्वियों की शरीर साधना का समन्वीकरण कर योग को ही साधना बना दिया। योग की गूढ़ देशना को व्यावहारिक बनाया, उसे विकसित कर तन–मन को साधने का विज्ञान बना दिया। आज का वर्तमान योग–विज्ञान एवं क्रियात्मक योग महायोगी गोरखनाथ एवं उनके द्वारा प्रवर्तित नाथपंथी योगियों की देन है।

यद्यपि कि योग भारत की अत्यन्त प्राचीन आध्यात्मिक विद्या है। हड़प्पा सभ्यता के पुरातात्त्विक अवशेषों में योगी एवं योग–मुद्राओं का प्रमाण उपलब्ध है। वैदिक संहिताओं, आरण्यकों, उपनिषदों में प्राप्त श्रमण–तपस्वी विचार–दर्शन में योग के सूत्र दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मुनि, यति, श्रमण का उल्लेख बाद के योगी परम्परा के ही आरम्भिक स्वरूप का परिचायक है। महाभारत भी भारतीय योग–परम्परा को रेखांकित करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। सांख्य–दर्शन के प्रवर्तक कपिल भी योग–दर्शन के ऋषि हैं। कपिल का सांख्य योग प्राचीनतम योग–दर्शन है।

योग को व्यवस्थित एवं विकसित दर्शन के रूप में पतंजलि ने पातंजलि योग–दर्शन नाम से लिपिबद्ध किया। भारत में योग–दर्शन पंतजलि के नाम से जाना जाने लगा। पातंजलि योग ऋषियों–मुनियों–

तपस्वियों के आश्रमों तक सिमटा रहा तथा सामान्य जन के लिए यह गूढ़-दर्शन के रूप में दुरूह एवं असाध्य माना जाता था। महायोगी गोरखनाथ ने पातंजलि योग-दर्शन को प्रवर्धित एवं विकसित किया। उसका व्यावहारिक अर्थात् करणीय पक्ष को शब्द दिया। योगियों के साथ जनता के द्वार तक योग को पहुँचाया। भारत सहित दुनिया में आज जो योग-साधना प्रचलित है उसके प्रमुख प्रवर्तक आचार्य महायोगी गोरखनाथ हैं।

20 जून 2015 ई. को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस की पूर्व सन्ध्या पर श्री गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर में आयोजित एक समारोह में उत्तर प्रदेश के माननीय राज्यपाल श्री राम नाईक जी ने कहा कि योग का जो स्वरूप आज हमें देखने को मिलता है उसे दुनिया में आमजन के लिए सर्वसुलभ कराने का श्रेय महायोगी गोरखनाथ एवं उनके द्वारा प्रवर्तित नाथपंथ के योगियों को है। उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी ने भी कहा कि एक सम्पूर्ण विद्या एवं साधना के रूप में योग की दो समानान्तर धाराएं मिलती हैं। एक पतंजलि द्वारा प्रवर्तित पातंजलि योग दर्शन एवं दूसरा महायोगी गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिष्ठापित नाथपंथ का क्रियात्मक योग। दोनों योग पद्धतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित योग दर्शन जहाँ इसका सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करता है, वहीं गुरु श्री गोरक्षनाथ द्वारा इसका व्यावहारिक स्वरूप सिद्ध किया गया।

महायोगी गोरक्षनाथ ने योग के शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन की ऐसी जीवन पद्धति विकसित की जिसके द्वारा मन एवं शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। नाथपंथ द्वारा विकसित योग-पद्धति के बल पर व्यक्ति न केवल अपनी मानसिक एवं शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित कर सकता है अपितु इन्द्रियेतर तथा प्रकृति के क्रियाकलापों पर आध्यात्मिक अंकुश लगा

सकता है।

आज का जीवन आपा–धापी से भरा हुआ है। आधुनिक जीवन–पद्धति की जटिलताओं के कारण तथा भौतिकवादी जीवन पद्धति के अनवरत विकास से मानव–जीवन में मानसिक तनाव बढ़ा है। मनुष्य अपनी महत्त्वाकांक्षा पर नियंत्रण पाने में असमर्थ हो रहा है। शारीरिक स्वस्थता भी दुष्प्रभावित हो रही है। जीवन का चैन छिनता जा रहा है। इन आधुनिक युग में महायोगी गोरखनाथ का योग रामबाण बनकर उभरा है। महत्ता इतनी कि योग पर एक बार फिर दुनिया फिदा हो चुकी है। महायोगी गोरखनाथ एवं नाथपंथ के योगियों द्वारा प्रतिष्ठित योग ने मानव को तन–मन को साधने का ऐसा अचूक नुस्खा दिया है जो युग–युगान्तर तक प्रासंगिक एवं उपयोगी रहेगा।

श्री गोरखनाथ की महन्त–परम्परा एवं उसका युगधर्म

नाथपंथ के प्रवर्तक महायोगी गोरखनाथ की तपस्थली श्री गोरखनाथ मन्दिर के महन्त एवं श्री गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर गुरु श्री गोरक्षनाथ के ही प्रतिनिधि माने जाते हैं। नाथपंथ के सिद्ध, योगी एवं हिन्दू समाज उनमें ही शिव–गोरक्ष के स्वरुप का दर्शन करता है। श्री गोरखनाथ मन्दिर एवं श्री गोरक्षपीठ के महन्त–पीठाधीश्वर को नाथ योगी अपना आध्यात्मिक नेता मानते हैं। वस्तुतः श्री गोरखनाथ मन्दिर एवं श्री गोरक्षपीठ के महन्त एवं पीठाधिपति की नाथपंथ में सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। श्री गोरखनाथ मन्दिर के मठ के महन्तों की परम्परा आदर्श तथा अविचल निष्ठा वाली है। महायोगी गोरक्षनाथ से लेकर अद्यतन श्री गोरक्षपीठ के महन्त–पीठाधीश्वर की यह अखण्ड परम्परा गुरु श्री गोरक्षनाथ द्वारा प्रज्वलित अखण्डदीप एवं अखण्ड धुनी की तरह पवित्र और अखण्डित है। 'नाथ' और 'योगी' श्री गोरक्षपीठ के महन्त की महिमा अनूठी हैं।

'महन्त' शब्द 'महान्त' का रुपान्तरण है। जिस स्थिति के समक्ष महानता भी छोटी प्रतीत होने लगे अर्थात महानता की उच्चतम् सीमा जहाँ पूर्ण हो उसके पश्चात की स्थिति को महन्त कहते हैं। महन्त का एक अर्थ और किया जाता है। जब मोह का अन्त कर योग के प्रभाव से उत्पन्न दया, करुणा और प्रेम का प्रकाश अस्तित्त्व को जगमगा दे, उस अवस्था में पूर्ण सिद्ध 'मोहान्त' कहा जाता है। यह 'महन्त' में इस 'मोहान्त' की भी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती हैं।

श्री गोरक्षपीठ के महन्त एवं पीठाधीश्वर का व्यक्तित्त्व कठिन साधना से निर्मित होता है। नाथपंथ में दीक्षा की तपपूर्ण कसौटी पर शिष्य रूप में दीक्षित होते समय खरा उतरना होता है। स्पष्ट है कि

'दीक्षा' से पूर्व ही कठिन तप का अभ्यास कर 'योगी' की जीवन–चर्या प्रारम्भ हो जाती है। यह साधना 'तन' और 'मन' दोनों की होती है। नाथपंथ की कठोर योग–साधना का सफल तपस्वी गोरक्षपीठ के महन्त–पीठाधीश्वर का शिष्यत्व प्राप्त करता है। वर्षों शिष्य रूप में निखरता है। जब पीठाधीश्वर–महन्त, यह आश्वस्त हो जाते हैं कि उनका उत्तराधिकारी–शिष्य नाथपंथ की इस समृद्धि महन्त परम्परा के निर्वहन में सक्षम हो चुका है तब अपने उत्तराधिकारी शिष्य को महन्त पद पर अभिशिक्त करते हुए स्वयं की देह–मुक्ति के साथ परलोक मार्ग के पथिक बन जाते हैं।

नाथपंथ के इस सर्वोच्च केन्द्र के महन्त–योगी सदैव सौम्य, शान्त, शरणागतवत्सल होते हैं। तथापि राष्ट्र–समाज के अस्तित्त्व एवं प्रगति तथा लोक–कल्याण में बाधक शक्तियों को नियंत्रित करने अथवा उनका नाश करने में वे योद्धा–सन्यासी बनने से परहेज नहीं करते। इस प्रकार श्री गोरखनाथ मन्दिर के महन्त एवं श्री गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर योगी की परम्परा एवं योद्धा–संन्यासी की परम्परा के समवेत वाहक हैं। यह परम्परा देव–पूजा से अधिक दुःखों से तप्त मानव को सुखी बनाने पर जोर देती है। यह परम्परा पांथिक उपासना से अधिक महत्त्व लोक–कल्याण को देती है। इस महन्त परम्परा में योग–सिद्धि का चरम लक्ष्य लोक–कल्याण ही माना जाता गया है। श्री गोरखनाथ मन्दिर की महन्त परम्परा का मानना है कि महायोगी गोरखनाथ 'लोक–कल्याण' के लिए ही अवतरित हुए। वस्तुतः 'लोक–कल्याण' ही नाथपंथ का अभिष्ट है। नाथपंथ के योगियों ने अपनी यशस्वी परम्परा को कभी रूढ़ नहीं होने दिया। वे युगानुकूल अपनी भूमिका बदलते गए। लोक–कल्याण हेतु जब–जैसा आवश्यक हुआ, उन्होंने किया।

श्री गोरक्षपीठ एवं श्री गोरखनाथ मन्दिर के महन्त–योगियों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि राष्ट्र–रक्षा, सामाजिक–समरसता, कमजोर–दलित–पीड़ित की सुरक्षा–संरक्षा के लिए सदैव इस सिद्ध–पीठ

का स्वर मुखरित रहा। मध्ययुगीन भारत में बाबा अमृतनाथ, परमेश्वरनाथ, बुद्धनाथ, रामचन्द्रनाथ, वीरनाथ, अजबनाथ तथा पिपरिनाथ जी इस पीठ के उन यशस्वी महन्तों में उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने सामाजिक जन-जागरण का अनवरत अभियान चलाया। उन्नीसवीं शताब्दी में महन्त गोपालनाथ जी तो बीसवीं शताब्दी में योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी एवं महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज महन्त-योगी परम्परा का निर्वाह करते हुए भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के क्रान्तिकारी सिपाही भी थे।

आजाद भारत में युगानुकूल इस सिद्धि-पीठ ने अपनी भूमिका बदली। महन्त दिग्विजयनाथ जी ने शिक्षा, स्वास्थ्य को लोक-कल्याण का मुख्य आधार बनाया। राष्ट्रधर्म को श्रेष्ठतम धर्म घोषित किया। हिन्दुत्त्व को राष्ट्रीयता के पर्याय की पुनर्प्रतिष्ठा की। समाज-राष्ट्र की दिशा निर्धारित करने में अति महत्त्वपूर्ण हो चुकी लोकतान्त्रिक-सत्ता पर अंकुश रखने, उसे दिशा-दिखाने एवं 'राजनीति' को 'धर्मनीति' के अनुरूप बनाए रखने के लिए 'राजनीति' को 'युगधर्म' माना और श्री गोरक्षपीठ एवं श्री गोरखनाथ मन्दिर की महन्त परम्परा में इसे सम्मिलित किया। समर्थ गुरु रामदास, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द जैसे संन्यासियों की सत्ता को दिशा देने की वैचारिक अधिष्ठान से एक कदम आगे बढ़ते हुए स्वयं राजनीति के दलदल में कूदे। वे स्वतन्त्र भारत के पहले संन्यासी हैं जिसने 'राजनीति' में प्रवेश किया और भारत की संसद में हिन्दू जनता के प्रतिनिधि रूप में उपस्थित हुए। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज एवं महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने सामाजिक-समरसता के नाथपंथी अभियान को एक बार फिर अत्यन्त प्रभावी बनाया। नाथपंथ के इस सिद्ध-पीठ की यशस्वी महन्त परम्परा अपने इसी लोक-कल्याण केन्द्रित 'योग-धर्म-राजनीति' की अद्वितीय त्रिवेणी को एकाकार कर दुनिया के समक्ष एक अद्वितीय प्रतिमान खड़ा कर चुकी है।

सेवा भी जहाँ साधना है

मानव–जीवन के परम–लक्ष्य मोक्ष अर्थात् मुक्ति के लिए नाथपंथ ने योगाधारित तन–मन की जो साधना विकसित की, लोक–कल्याण उस साधना का प्रबल पक्ष है। नाथपंथ ने सुसभ्य, सुसंस्कृत, स्वस्थ समाज की रचना ही लोक–कल्याण का स्थायी मार्ग माना। समरस–संवेदनशील समाज ही लोक–कल्याण को समर्पित होता है। ऐसा समाज सेवा–भावी होगा। सेवा–भावी समाज ही दुःख से मुक्त अध्यात्मिक प्रवृत्तियों का समाज होगा। इसी सामाजिक परिवेश में नाथपंथी योग–साधना अपने चरम–लक्ष्य तक पहुँचेगी। इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि में नाथपंथ ने सेवा–साधना के बल पर लोक–कल्याण और योग–साधना के द्वारा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया।

श्रीगोरक्षपीठ एवं श्रीगोरखनाथ मन्दिर की महन्त–परम्परा सेवा एवं योग साधना का समन्वित नाथपंथी प्रतिमान है। ऐसा प्रतिमान जो भारत की सनातन संस्कृति का भी प्रतिनिधित्त्व करता है। इस पीठ ने बीसवीं शताब्दी में शिक्षा एवं स्वास्थ्य को मानव–सेवा का प्रस्थान बिन्दु मानकर अपनी युगानुकूल भूमिका का विस्तार किया। गो–सेवा इस पीठ का प्रारम्भ से ही अधिष्ठान रहा है। महन्त दिग्विजयनाथ जी ने 1932 ई. में महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की नींव रखी। 1948 ई. तक महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् ने प्राथमिक से लेकर उच्चशिक्षा तक की शिक्षण–संस्थाओं की स्थापना कर दी। भारतीय संस्कृति के अनुरूप विकसित ये शिक्षण संस्थाएं भी आजाद भारत में शिक्षण–संस्थान का माडल बनी। गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना इसी सेवा–साधना के संकल्प का परिणाम था। इस क्षेत्र में प्रथम महिला महाविद्यालय (महाराणा प्रताप महिला महाविद्यालय 1948 ई., जो विश्वविद्यालय की स्थापना का हिस्सा बन गया) तकनीकी शिक्षा के लिए प्रथम पालीटेक्निक

(महाराणा प्रताप पालीटेक्निक, गोरखपुर 1956 ई.) प्रथम आयुर्वेदिक कालेज (दिग्विजयनाथ आयुर्वेदिक कालेज, 1971 ई.) की स्थापना का श्रेय श्री गोरक्षपीठ को ही है। वर्तमान मे श्री गोरखनाथ मन्दिर द्वारा संचालित 44 सेवा-संस्थानों में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक की शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाएं, चिकित्सा एवं चिकित्सा शिक्षा के संस्थान, तकनीकी ज्ञान-विज्ञान के संस्थान, कृषि के वैज्ञानिक विकास हेतु कृषि विज्ञान केन्द्र, गो-सेवा एवं दरिद्र नारायण सेवा जैसी संस्थाएँ संचालित है। मानव-पशु-पक्षी सहित सेवा के सभी आयामों पर श्रीगोरखनाथ मन्दिर कार्य करता है। दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्ता युक्त शिक्षा एवं गाँव के गरीब, मजबूर, असहायों तक निःशुल्क चिकित्सा पहुँचाने में श्री गोरखनाथ मन्दिर अहर्निश जुटा हुआ है। प्रतिवर्ष लगभग 750 छात्र-छात्राओं एवं खिलाड़ियों को छात्रवृत्ति, लगभग 500 विद्यार्थियों के निःशुल्क छात्रावास में रखकर वस्त्र, भोजन एवं पढ़ाई की सम्पूर्ण व्यवस्था, प्रतिवर्ष लगभग 5000 रोगियों का निःशुल्क उपचार, लगभग 2000 हजार गरीबों का निःशुल्क आँख का आपरेशन तथा गरीब एवं असहायों की आर्थिक सहायता श्रीगोरक्षपीठ की सेवा-साधना अभियान का हिस्सा है। वस्तुतः दीन-दुखियों की सेवा भी नाथपंथ की साधना है।

श्री गोरखनाथ मन्दिर का भण्डारा सभी के लिए खुला होता है। प्रतिदिन महायोगी गोरखनाथ को भोग लगाने के बाद आस-पास के सभी को सहभोज हेतु भण्डारा खुल जाता है। प्रतिदिन लगभग 500 दीन-दुखी, गरीब प्रसाद के रूप में भोजन ग्रहण करते हैं। मन्दिर की गोशाला गो-सेवा का अपना विशिष्ट माडल है। वर्ष भर के पर्व-त्योहार पर श्री गोरखनाथ मन्दिर एवं उसके महन्त का सामाजिक सहभाग भी अपने तरह का अनूठा है। विजयादशमी पर्व पर श्रीराम का राजतिलक, शस्त्रपूजन, शोभा-यात्रा, महाशिवरात्रि पर्व पर भव्य-आयोजन, कृष्ण-जन्माष्टमी पर कृष्ण-जन्मोत्सव, दीपावली पर एक दीप शहीदों

के नाम के साथ दीपोत्सव, बनटांगियों के साथ गोरक्षपीठाधीश्वर का दीपावली मनाना, होली में नृसिंह की पूजा के साथ होलिका दहन के जुलूस में सम्मिलित होना तथा भगवान नृसिंह के रथ पर सवार होकर हजारों की संख्या में होलिकोत्सव मनाती जनता के साथ महानगर के साथ रंग खेलना इस पीठ के सामाजिक सहभाग के कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं।

श्री गोरक्षपीठ योग को जन-जन तक पहुँचाने हेतु मासिक पत्रिका योगवाणी का प्रकाशन, लोगों के सुख-दुख में सम्मिलित होने, लोक-कल्याण से जुड़े हर धार्मिक-सामाजिक-राजनीतिक विषय पर सक्रिय हस्तक्षेप के द्वारा जन-सरोकारों से जुड़ी हुयी है। श्री गोरक्षपीठ ने एकान्तिक योग-साधना के साथ-साथ सेवा और सामाजिक सहभाग का माडल देश-दुनिया के मठ-मन्दिरों के लिए प्रस्तुत किया है। नाथपंथ की यह सर्वोच्च धर्मपीठ नाथपंथ की वैचारिकी, भारतीय सनातन संस्कृति के मूलतत्त्व एवं 'हिन्दुत्त्व ही राष्ट्रीयता' के वैचारिक अधिष्ठान का संगम है।

पूर्णता एवं संतोष का संदेश है महायोगी की खिचड़ी

महायोगी गोरक्षनाथ का खप्पर अक्षय पात्र न तो कभी भरता है और न कभी खाली होता। वस्तुतः खप्पर प्रतीक है उस अन्नमय कोष का जो भरकर भी अधूरा रहता है और मानव संस्कृति के अस्तित्व के लिए अन्न की महत्ता बनी रहती है। यह प्रतीक है 'उदर' का भी जहाँ प्रतिदिन अन्न क्षुधापूर्ति के जेठराग्नि यज्ञ में भष्म होता रहा है। आदमी पहले भी अन्न पैदा करता था और आज भी वैज्ञानिक साधनों से लैस होकर अन्नोत्पादन में लगा हुआ है। लेकिन खप्पर तब भी अपूर्ण था और आज भी। मकर संक्रान्ति पर्व पर महायोगी गोरक्षनाथ के उसी अक्षय-पात्र अर्थात् खप्पर को भरने के लिए देश-विदेश के नाथपंथी साधु-सन्यासी, भक्त-अनुयायी एवं श्रद्धालु अपनी श्रद्धा की खिचड़ी चढ़ाते हैं। मकर संक्रान्ति पर्व पर गोरक्षनाथ जी को खिचड़ी देने की परम्परा गोरक्षनाथ जी के गोरखपुर में आकर तपस्यारत होने के समय से ही चल रही है। महायोगी को चढ़ने वाली खिचड़ी के कई प्रतीकात्मक पहलू भी है। यह ऋषि-कृषि के अभिनव एकता की प्रतीक है। खिचड़ी साधु-सन्यासियों का प्रिय भोज्य है। चावल-दाल के अभिन्न मेल से निर्मित खिचड़ी सामाजिक समरसता, सुपाच्यता एवं सात्त्विकता का प्रतीक है। कृषि प्रधान देश में अन्न की प्रतिष्ठा का भी प्रतीक है। अन्नदान के माध्यम से हर भूखे को भोजन कराने के सामाजिक दायित्त्व की प्रेरणा है। महायोगी की खिचड़ी धर्माधिष्ठित सम्पन्नता के साथ सन्तोष का संदेश है। खप्पर का खाली न होना पूर्णता है तो कभी न भरना सन्तोष अर्थात आवश्यकता से अधिक का संग्रह न करने का उपदेश है।

मकर संक्रन्ति पर्व पर महायोगी गोरक्षनाथ को खिचड़ी चढ़ाने

सम्बन्धी एक विलक्षण किंवदन्ती लोक–प्रचलित है। कहा जाता है कि त्रेता युग में गोरक्षनाथ घूमते हुए हिमांचल के प्रतिष्ठित शाक्त पीठ ज्वाला देवी के मन्दिर में पहुँचे। देवी ने उनसे आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। ज्वाला देवी के उस मन्दिर में शाक्त परम्परा के भक्ष्याभक्ष्य की स्वीकृति के कारण तामसी भोज भी होता था। फलतः सात्त्विक गोरक्षनाथ वहाँ भोजन ग्रहण करना नहीं चाहते थे। किन्तु देवी का आग्रह वे टाल नहीं पाए। उन्होंने वहाँ के तामसिक परिवेश में भोजन न करने का एक रास्ता निकाला। ज्वाला देवी से उन्होंने आग्रह किया कि मैं भिक्षान्न से बनी खिचड़ी ग्रहण करता हूँ। आप पानी गरम करें मैं भिक्षान्न से अपना खप्पर भर कर आता हूँ। खिचड़ी माँगने निकले गोरक्षनाथ गोरखपुर तक आ गए। उन्होनें यहाँ अपना खप्पर रख दिया। यह तिथि मकर–संक्रान्ति की थी। उनके भक्त उसमें खिचड़ी के अन्न चावल–उड़द, तिल, घी चढ़ाते गए। खप्पर खाली का खाली रहा। गोरखनाथ उसी खप्पर से ही भक्तों को खिचड़ी प्रसाद देने लगे, खप्पर खाली ही नहीं हुआ, वह अक्षय–कोष बन गया। न तो उनका खप्पर भरा और न ही वे वापस ज्वाला देवी के मन्दिर वापस लौटे। अचिरावती के तट के सुरम्य वातावरण में वे तपस्यारत हो गए। अद्‌भुत है कि आज भी ज्वाला देवी के मन्दिर में शक्ति अर्थात् ज्वाला के अदहन का पानी खौल रहा है, इस आशा एवं प्रतीक्षा में कि गोरखनाथ लौटेंगे और उनकी खिचड़ी पकेगी। इस लोक–प्रचलित जनश्रुति के कारण गोरखपुरवासी भी नहीं चाहते कि महायोगी का खप्पर कभी भरे। खप्पर का न भरना गोरखपुरवासी अपने ऊपर गुरु गोरक्षनाथ की कृपा मानते हैं। तथापि प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति पर्व एवं बुढ़वा मंगल को लाखों की संख्या में श्रद्धालु गोरक्षनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाते है। श्री गोरखनाथ मन्दिर का यह सर्वाधिक प्रमुख और प्रसिद्ध पर्व है।

गोरक्षनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाने की यह परम्परा दिनों–दिन

समृद्ध होती गयी। दूर–दूर से आने वाले भक्त एक–दो दिन पहले यहाँ पहुँचते और गोरक्षनाथ जी की कृपा–छत्र में एक–दो दिन और रुकते। धीरे–धीरे मकर संक्रान्ति पर्व ने मेला का रूप ग्रहण किया। आज श्री गोरखनाथ मन्दिर का यह मेला महीने भर चलता है। मकर संक्रान्ति पर्व से प्रारम्भ श्रद्धा के खिचड़ी मेले में अगले एक माह के प्रत्येक रविवार एवं मंगलवार को बड़ी संख्या में श्रद्धालु आते हैं। गोरखपुर महानगर के लोग एवं किसी कारण से मकर संक्रान्ति को खिचड़ी न चढ़ा पाने वाले श्रद्धालु मकर संक्रान्ति के बाद के दूसरे मंगलवार को अपनी खिचड़ी चढ़ाते हैं। यह मंगलवार 'बुढ़वा मंगल' के नाम से जाना जाता है।

मकर–संक्रान्ति पर्व पर श्री गोरखनाथ मन्दिर की ओर से सहभोज होता है। यह सहभोज महायोगी गोरक्षनाथ द्वारा अपने खप्पर से श्रद्धालुओं को बाँटी गई खिचड़ी का प्रतीक है। बड़ी संख्या में श्रद्धालु प्रसाद स्वरूप खिचड़ी ग्रहण करते हैं। श्री गोरखनाथ मन्दिर की यह समृद्ध परम्परा निरन्तर विकासमान होती जा रही है।

परिशिष्ट

गोरखबानी में समाज-दर्शन के महत्त्वपूर्ण अंश

मनुष्य जीवन की सार्थकता यही है कि उसका अधिक से अधिक सदुपयोग हो। यह जीवन व्यर्थ और निष्फल न चला जाए। राग-रंग एवं आनन्दोत्सव के साथ घर-परिवार-समाज में रमण करते हुए हँसते-हँसते परमात्मा का ध्यान करते रहना चाहिए। संसारी जीव अनासक्त रहते हुए परब्रह्म परमात्मा का निरन्तर ध्यान-चिन्तन-स्मरण करता हुआ उनके बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। हँसते-खेलते हुए जो मानव मन को वश में रखता है वह निश्चिन्त होकर सदैव 'नाथ' अर्थात् परमात्मा के साथ रहता है।

हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यांन। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियान।
हसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।।

सबदी-8

बाल्यावस्था और युवावस्था में जो मनुष्य संयमित जीवन व्यतीत करते हैं, मन को वश में रखते हैं, इन्द्रिय पर नियन्त्रण रखते हैं, समय-असमय की दोनो परिस्थितियों में सदाचरण का आश्रय लेते हैं, शीघ्र भोजन प्राप्त करने वाले अल्पाहारी होते हैं, उनका शरीर 'नाथ' अर्थात् परमात्मा का हो जाता है।

बालै जोबनि जे नर जती, काल दुकाला ते नर सती।
फुरतैं भोजन अलप अहारी, नाथ कहै सो काया हमारी।।

सबदी-20

नाथपंथ में शब्द-साधना अर्थात् वाणी का अत्यन्त महत्त्व है। गोरखनाथ कहते हैं कि शब्द ही ताला है, शब्द ही वह कूँची अथवा ब्रश है जो प्रतिमा का निर्माण करता है अथवा शब्द ही वह कुँजी है जो

अपने (व्यक्तित्व) को खोलता है। शब्द के द्वारा ही सभी को जाग्रत किया जाता है अर्थात् शब्द या वाणी के द्वारा ही उपदेश किया जा सकता है। शब्द के द्वारा ही सूक्ष्म शब्द से परिचय हो जाता है। तब स्थूल शब्द सूक्ष्म मूल शब्द में समा जाता है। वस्तुतः नाथपंथ में शब्द अर्थात् वाणी का महत्त्व प्रतिपादित किया और बताया कि शब्द या वाणी का प्रयोग दूसरों को सुख पहुँचाने, मार्ग दिखाने एवं आत्मसाक्षात्कार करने के लिए है।

सबदहिं ताला सबदहिं कूँची, सबदहिं सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूं परचा हुआ, सबदहिं सबद समाया।

सबदी–21

गोरखनाथ कहते हैं कि आचरण–व्यवहार सोच–समझकर करना चाहिए। अचानक हर बात में नहीं बोलना चाहिए, हर कार्य में जल्दी नहीं दिखाना चाहिए, सोच–समझकर पाँव बढ़ाना चाहिए, अहंकार नहीं करना चाहिए एवं सहज–सरल ढंग से रहना चाहिए।

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चलिबा, धीरैं धारिबा पांव।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा भणत गोरष रावं।।

सबद–27

नाथपंथ में संयमित जीवन का सबसे बड़ा सूत्र शब्द–अन्न संयम है। महायोगी गोरखनाथ का कहना था 'मितभाषी और अल्पाहारी के शरीर में ही प्राण वायु का नियमित प्रवेश होता है।'

थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ तिस घटि पवनां रहै समाइ।

सबदी–32

स्वस्थ शरीर का मंत्र देते हुए नाथपंथ के योगी कहते हैं कि 'युक्त आहार एवं आवश्यक नींद से निरोगी काया पाई जा सकती है।'

अवधू आहार तौड़ौ निद्रा मोड़ौ कबहुँ न होइगा रोगी।

सबदी–33

नाथपंथ ज्ञान के साथ कर्म का, कथनी के साथ करनी का, दर्शन के साथ व्यवहार का और शास्त्र के साथ स्वरूप का समर्थक है। महायोगी गोरखनाथ कहते हैं – 'हे पंडित! जिसको तुमने पढ़कर देखा है, उस सार–ज्ञान में रहकर (जीकर) भी देखा। भवसागर से पार उतरने के लिए कोरे ज्ञान से अधिक अपना कर्म महत्त्वपूर्ण है। घर–घर में ब्रह्म की ज्योति जगमगा रही है। इस प्रकाश के अपने ही भीतर जलते होने भी यह मार्ग पशु को दिखाई नहीं पड़ता।'

पढ़ि देखि पंडित रहि देषिसारं। अपणी करणों उतरिबा पारं।
बदंत गोरखनाथ धू साषी। धरि धरि दीपक (बलै) षणि पसू न (पेषे) आंषी।।

सबदी–59

सदाचरण एवं मन की पवित्रता पर नाथपंथ के योगियों का अत्याधिक बल है। उनके अनुसार मन के शुद्ध, संयमित और पवित्र विचारों से घर में कठवत का जल भी गंगाजल है क्योंकि गंगा–स्नान एवं गंगा जल के उपयोग से जो फल बताये गये हैं वे मन की शुद्धता से स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। माया के बन्धन में पड़े हुए मन को मुक्त करने वालों का संसार अनुयायी होता है।

अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा। बांध्या मेल्हा तो जगन्न चेला।

सबदी–153

शाकाहार के पक्षधर नाथपंथ के योगी मांसाहार को समाज–हित के प्रतिकूल मानते हैं। उनका कहना कि मांसाहार हिंसा की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। इससे मनुष्य में दया–भाव, धर्म अर्थात् सद्–व्यवहार अथवा सदाचार–सत्कर्त्तव्य का नाश होता है। इसी प्रकार जो प्राणी मदिरा का सेवन करता है उसकी प्राणशक्ति क्षीण होती है, शरीर विकारग्रस्त

होता है। जो प्राणी भाँग का सेवन करता है, वह ज्ञान और ध्यान दोनों से वंचित हो जाता है। मांसाहारी तथा मदिरा एवं भाँग का सेवन करने वाले मनुष्य की बुद्धि विकृत होती है, वह अपने पापकर्म के कारण नरकगामी होकर समराज के सम्मुख रोता है।

अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवत तहां प्राण निरास।
भांगि भषंत ग्यानं ध्यानं षोवंत। जम दरबारी ते प्रांणी रोवंत।।

सबदी–165

गुरु श्रीगोरखनाथ कहते हैं जीव और ब्रह्म का एक ही साथ निवास है। इसलिए जीव–हत्या कर रक्त–मांस का सेवत मत करो। प्राण–घात मत करो। सबको अपने ही गोत्र या कुल का समझो। सभी प्राणियों को अपने पुत्रों के समान देखो।

जीव सीव संगे बासा। बधि न षाइबा रूध्र मासा।
हंसघात न करिबा गोतं। कथंत गोरष निहारि पोतं।

सबदी–227

महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर,

उत्तर प्रदेश-273009, भारत

इ-मेल : mygsg18@gmail.com

वेबसाइट : www.ddugorakhpuruniversity.in